प्राक्कथन

आनंद का क्षण आता हैं, जाता है किंतु जाते जाते दूसरे क्षणको आनंद दे जाता है । पहला भाग पढने पर पाठकोके कुछ पत्र आए । सामान्यसे 'ठीक है आनंद आया , समाधान हुआ,' ऐसाही आशय है । मेरा आनंद और भी बढता जब कोई अपना सुझाव भेजता । त्रुटिया कम होनेंसे वह सुझाव कारण होता । कहते हैं ज्ञानी पुरुषका ह्रदय दर्पण सदृश्य होना चाहिए होना भी है । जो किसी वस्तुको बिन दूषित किये परिवर्तित कर देता है ; आये हुए पत्रोंने परावर्तनका कार्य किया ।

शाश्वत शुध्द तत्वोंको स्मरणमे रखते हुए दूसरा भाग भी पूरा हुआ । ' स्मरण ' इसलिए कहती हूं किं कहीं ऐसा न हों अतोत के आनंदका क्षण कर्तव्य भुला दे । ज्ञानका सागर अबाध है,मानवका कर्तव्य है अपनी अपनी अंजुलीमे उसमेसे श्रेय उपादेय जो है सो ले । शक्ति अल्प है और समय तो चलताहि रहता है; दोनोंका सुवर्णमध्य कहाँ है, यह समझना सही समझदारी है ।

पहले भागमे कुछ दोष हैं, वे दोष दुहराए नहीं जायेंगे इसपर कडी नजर रखते हुए यह दूसरा भाग सुचारु रुप लेकर आपके हाथ सोपू इसका भरसक प्रयत्न किया है ।

नय वो तराजु मान लिया गया है । ठीक है । एक पलडेमे वचन रखा जाता है दूसरे मे वस्तु । वजन कोई नही लेता, वस्तु लेता है , यह व्यवहार नीति है । वजन क्या है ? वजन है व्यवहारनय और वस्तु है निश्चयनय जो उपादेय है । वजन को वजन और वस्तुको वस्तु समझो कोई झगडा नही होगा ।

पूजक भक्त होता है , जो विकारोंसे विभक्त रहना चाहता है । परिणामस्वरुप भक्त आराध्येके चरण छू लेनेपर आचरणसे विभक्त न हो इस प्रयासमे आचार्योंने शास्त्रोंका सृजन किया है । उन श्रेष्ठ शास्त्रोंमेसे यह चिंतन शृंखला, भावरुपी कडियोंको जोडकर बनायी है । इस शृंखलाकी एकभी कडी न टूटे , लेखकने ऐसी लेखनीको सजन रख छोडा है ।

सिध्दात्म-गुण-चिंतन-शृंखला एक ऐसी शृंखला है जो जो कर्मसे छुडानेंवालेको बांध रखाती है और जूडानेवालेको मुक्त करती, है, फलस्वरुप वह अन्यत्र कहीं जा बसे ।

चिंतन छायाके समान है, जब वह ज्ञानीके आगे चलता है तो दीर्घ होता हैं और ज्ञानी आगे होता है तो चिंतन पीछेही रहात है ।

पिछली अष्टान्हिका पर्वके निमित्त 'णमोसिध्दाणं' भाग १ का प्रकाशन लघु पुस्तिकाके स्वरुप हुआ है । जिसका मूल्यांकन विद्वानोंद्वारा हुआही है ।

मुमुक्षु प्राणियोंको प्रमाद छोडकर स्वात्मबांध लेनेमे सदैव उत्साहित रहना है । उस उत्साह को बनाये रखने मे इस पुस्तिकाका सदुपयोग हो सकेगा ऐसी आशा रखती हूं । मुझे विश्वास है कि विज्ञ स्वाध्यायप्रेमी इससे लाभान्वित होंगे ।

णमो सिध्दाणं भाग २ :

ॅहीं अनंत दर्शनाय नमः ।

इस संबंधमे मौलिक विवेचन आया है , उस मौलिक गुणके मालिक है सिध्द भगवान ! अहो, अनंत दर्शनका क्या मोल करें ! आगम ग्रंथोंमे तो अनंत शब्द की मर्यादा है । अनत क्या अर्थ होता है ,कहातक होता
है । अनंतही परिसीमा परिसमाप्ति है तो फिर अनंत क्या है ? आगम ग्रंथोके दीपकसे हम अनंत दर्शन क्या है यह जान सकते है । किंतु यहां तो सिध्द भगवानकी बात है । उनके स्वसवेदन को हम क्या जाने ? वही स्वसवेदन हमें भी हमारे निजी पुरुषार्थसे प्राप्त हो , इस इच्छाके साथ अनंत दर्शनधारी सिध्दजीओंको नमस्कार हो ।

ॅहीं अनंतज्ञानाय नमः ।

सिध्दोंके गुणोंका स्मरण यहां चल रहा है । यही पूजा हैं सही पूजा है । रही अनंत ज्ञानके अर्थ की बात , उसकी बताना , वही हम छद्मस्थ जीवोंके सामर्थ्यसे बाहर है । जिन ग्रंथोंमे अनंत ज्ञानका स्वरुप बताया गया है , उतना अनंत ज्ञान जानना; इससे तो अनंत ज्ञानमे भी सीमा पडेगी । जिसे सिमामे हम बांध सकते हैं वह अनंत कैसे ? सिध्दोंके ज्ञान की एक समयकी पर्यायमे तो अनंत सिध्द आ जाते हैं ।

ॅहीं अतुलवीर्याय नमः

जब अतंराय कर्मका नाश होता है तो वीर्य गुण प्रकट होता है । किसी चीजको समझानेके लिये हम उदाहरण देते है, दृष्टांत देते है, तुलना करते, उपमेय उपमानका प्रयोग करते है । यहां तो सिध्दोंके गुणोंकी बात है, उनकी तुलना त्रिलोकस्थित किसी वस्तुसे करना उन अलौकिक गुणोंकी योग्यता को कम करना है। अतः 'अतुल ' शब्द योग्य है । तुलना

उसीकी हो सकती है जिसमें कुछ समानता हो । सिध्दोंके समान कोई नही, इसलिए वे अतुलवीर्य है ।

प्र.- अनंत और अतुल क्या एक ही हैं ?

उ. - सिध्दोके गुणोंकी अपेक्षा हो सकती है । केवल शब्द भेद है । जहांतक समझानेकी बात है ,अनंतका अर्थ है अतरहित, मोक्ष तथा परब्रम्ह और अतुल का अर्थ हैं अप्रतिम तथा अतिशय।

अनंत और अतुल गुणोंके नायक सिध्दोंको नमस्कार ।

ॅहीं अनंतसुखाय नम:

जो त्रिकाल हैं वही गुण सिध्दोंके है । आकुलताका जहां नाम नहीं, ऐसा सिध्दोंका गुण है । आकुलता यहां इस अर्थ मे लेंगे कि जीवको कुछ करनेका भाव होना । आकुलता अणुमात्र भी नहीं रहना , सिध्दोंकी स्व.कुलता है । कुछ करनेका भाव तो सिध्दोंमे रचताही नहीं । क्योंकि वे कृतकृत्य होते है ।

संसारभर जितने मनिषि हुए हैं, सबने सुखके संबंधमे विचार किया हे, अधिक तर लौकिक सुखोंके संबंध मेही विचार है । अलौकिक सुख अलौकिक है । जिन्होंने सुखका लक्षण अलौकिक किया है, उन्होनेभी सुखका जो मार्ग बताया वह मात्र लौकिक है । लौकिक मार्गसे अलौकि सुख नही होता । फिरभी एक बात तो माननीहि होगी,मनीषियोंको इतनी तो बातका पता चला था कि, लौकिक सुखमे सच्चा सुख नहीं । लेकिन सबकी कल्पनाओंने सुखकी छू लिया किन्तु सुखकी आत्माको छूनेसे मतलब है , वह सुख जो निरंतर होता है ; बाहर नहीं होंता; जडमे नहीं होता ।

सिध्दोंका सुख स्वाभाविक शुध्द आत्म स्वरुपके अनुभवसे उत्पन्न होता है । वह रागादि विभावोंसे रहित होता है । कर्मजन्य नहीं होता । विकल्प रहित होता है । इन लक्षणोंको देखते हुए यह तो समझमे आही जाता है , कि केवल दु:खका अभाव होना सुख नहीं है । क्यों कि अलौकिक सुख कर्मोके क्षयसे उत्पन्न होता है तथा वह जीवका स्वभाव है, जिसे दु:खका अभाव दे नहीं सकता । केवल दु:खका अभाव सुख हे ऐसा माननेसे जो रोग मुक्त हुआ रोगी है वह सुखी कहलाएगा ।

कैसा है सिध्दोंका सुख ? १) आत्मासे उत्पन्न होता है । २) विषयोंसे रहित है । ३) अनुपम ४) अनंत ५) विच्छेद रहित ६) स्वाधीन इ इ.ऐसा अलौकिक सुख सिध्दोंका है ।

सुखखी चर्चा है । लौकिक सुखकी नहीं । अलौकिक सुखकी यहां चर्चा है । लौकिक सुखकी क्यों नहीं ? थोडमे कहना हो तो ऐसा कह सकते है कि , लौकिक सूख रुचिके

आधिन है । इसिलिए तो पित्तज्वरवांले को कुट की हित द्रव्य है, प्यासे को ठंडा पानी सुखरुप है इ इ. । ऐसा कों ? मोह के कारण ऐसा होता है । एक वस्तु जिसको सुखरुप है वहीं वस्तु दुसरोंकोभी सुखरुप हो ऐसा नियम नहीं है । लौकिक सुखकी तुलना करने केहेतु ,

अचार्योंने यहां तक कहा है कि, स्पर्शादिकोंसे जो सुख देवेन्द्र चक्रवर्ती वगैर को प्राप्त होता है,जो कि श्रेष्ठ माना जाता है, सुख सिध्दोंके सुखका अनंतवा हिस्सा है । और भी कहाँ है की , तीन काल मे मनुष्य, तिर्यंच और देवोंकी जो सूख मिलता है वे सब मिलकार भी सिध्दकेएक क्षणकेसुख की भी बराबरी नहीं करते।

एक मनीषीने सुख शब्दका विभाजन किया । सुख शब्दोंको उसने सु+र+व ऐसा लिखा । रव का अर्थ है आवाज । सुका अर्थ है अच्छी । सु र व का अर्थ होगा अच्छी आवाज । जड द्रव्यो को भोगनेसे अच्छी आवाज नहीं आ सकती; वह तो आत्मासे आती है ।
(आवाजसे मतलब आस्वादसे है) सारांश यह हुवा कि वहीं सुख सुख है जिससे आत्मा का आस्वाद आता है , या यूं कव्हों जो आत्मा का आस्वाद आता है वह सच्चा सुख है । सुख जो इंद्रियोंसे प्राप्त होता है उसके संबंधमे उसने अच्छा आकाश इतनाही कहा है । ख अर्थ आकाश । जिस इंद्रियका सेवन करनसे आकाश अच्छा लगे (मन प्रसन्न हो) वह लौकिक-इंद्रियजन्य सुख है । चाह, आस्वाद और तृप्ती इनकी लौकिक सुखसे संबंध है । चाह को मर्यादा नहीं होतो. आस्वाद जो लेना है, वह आस्वाद निरंतर रहे इसे इच्छासे चाहकेमर्यादा नहीं होती । आस्वाद लेनेके लिए जीव सवंशक्तीका प्रयोग करता है । किंतु आश्चर्य है कि तृप्ती कभी नहीं होती ।

लौकिक सुख अलौकिकताको तो है ही ,उस अलौकिकताको समझनेका मार्ग भी अलौकिक होना परमावश्यक है । लौकिक मार्गसे वह समझमे नहीं आ सकता ।
प्र. - अलौकिक सुख श्रेष्ठ है. कैसे ?
उ.- भोग रतिमे अन्य पदार्थोंका आश्रय लेना पडता है, स्वानुभवसे आत्म द्रव्यही होता है । भोगरतिसे अच्युत होनेपरभी अध्यात्म रतिसे भ्रष्ट नहीं होता, इस हेतुसेभी अलौकिक सुख श्रेष्ठ है । भोगरति विघ्नोंसे युक्त है, अध्यात्म रति विघ्नमुक्त है ।
प्र.- अलौकिक सुख कैसे प्राप्त होता है ?
उ.- वीतराग भावमें स्थिति पानेंसे साम्यरसरुप अतीन्द्रिय सुखका वेदन होता है, सुख प्राप्त होता है ।

इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोगमे शोक रहित रहना चाहिए ।

शरीरादिमें आत्मबुध्दि नहीं रखना चाहिए ।

सुखकी केवल चर्चा करने से क्या लाभ ? सुखसे मतलब सच्चा सुख जो सिध्दोंने प्राप्त किया है। वह सुख अविनाशी है । सच तो यह है कि कोई विशेषण का प्रयोग करे ऐसा वह सुख हैही नहीं । क्योंकि विशेषणमे तुलना होती है या उपमा । महत्व सापेक्षतामे नहीं, निरपेक्षतामे है। सच्चा सूख तो निरपेक्ष होता है और निरपेक्ष होनेसे उसे शब्द और अर्थ की भी अपेक्षा नहीं, इसलिए शब्दोव्दारा सुखको समझाना असंभव है । फिरभी छद्मस्थ जीवोंको कैसा ? आइअ, अधिक चर्चा न हो इसलिए थोडे शब्दोंमे कुछ प्रश्नोत्तर-

प्र - सुखका लक्षण क्या है ?

उ.- सुखका लक्षण निराकुलता है ।

प्र. - सुखको प्रत्येक प्राणीमात्र ढूंढता है, सबको सुख क्यों नहीं होता ?

उ - जहाँ सुख है वहाँ ढूंढनेसेही सुख मिलता है ।

प्र.- आपका अभिप्राय क्या है ?

उ.- अभिप्रया ऐसा है कि, सुख आत्मामे है और प्राणीमात्र ढूंढता है जड द्रव्योंमे ।

प्र. - संसारमे सुख प्राप्त करनेसे क्या सुख नहीं होता ?

उ.- नहीं, संसारमें सुखका साधन जड द्रव्य है ।

प्र. - लौकिकमे सुखोंकी सामग्री होतेहुए भी लोग सुखी क्यों नहीं ?

उ.- लोग तो सुख, सुख मान ते ही नहीं ।

प्र.- ऐसा क्यों ?

उ.- आकुलता होती है, इलसिए सुख सुख नहीं होता ।

प्र.- इंद्रियोंकेबिना सुख कैसे संभव है ?

उ.- इंद्रियोंकेबिना सुख नहीं है , ऐसा मोहसे समझता है ।

प्र.- इंद्रियोंकेबिना सुख कोई सुख है ?

उ.- हां, सच्चा सुख वही ई, वह स्वसंवेद्य होता है ।

प्र.- तो, इद्रियोंसे सुख नहीं होता ?

उ- 'यत् पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितम्'। ऐसा शास्त्रोंमे आता है ।

ॐही अनंत सम्यक्त्वाय नम:

सम्यक्त्व लिखनेकी , कहनेकी या बतानेकी वस्तु है ही नहीं , मात्र वह है स्वसंवेदनसन्मुख होकर कदम उठाना, चलना कहांतक ? ध्येय जहांतक । ध्येय कहाँ ?

अपने पास । फिर चलना क्यों ? समझनेकी चीज है, क्या लिखें ! सम्यक्त्व तो छूटता नहीं । नहीं छूटे तो उसका अंतही कहां ? इसलिये तो अनंत है । चलना तो परमसमरसी भाव है । यहां तो, मार्गसे चलते श्रध्दारुप चरण, मार्ग एकमेक हुए हैं । एकमे होना तो स्वभाव है, स्वभावका कारण लिखे ? लौकिकमे तो देखा जाता है, चरण चलते हैं आगे,पीछे जाता है माग । यहां तो सम्यक्त्व मार्गभी है, चरणभी है । कौन आगे और कौन पीछे ? अनंत है अनंत !

शास्त्रोंमे आता है -

यदग्राह्यं न गृण्हाति गृहीतं नापि मुंचति ।

जानाति सर्वथा सर्व तत्स्वसवे द्यमस्म्यहं ।।

(जो आत्मासे भिन्न है , वह ग्रहण करनेयोग्य नहीं है , उसे यह कभी ग्रहण नहीं करता । जो इसका स्वभाव है, जिसे यह ग्रहण किये हुए है उसे यह कभी छोडता नहीं । जो सर्वका सर्वथा जानता है और स्वानुभवगम्य है वहीं मै हूं)

सम्सक्त्व तो गुण है । वह छूटता नहीं । कभी कभी लोग पूछ बैठते है कि, कहो पंडितजी (या महाराजजी) क्या आपको सम्यक्त्व हो गया है ? कैसे समझाएं उन लोगोंका ! अरे भाई, सम्यक्त्व क्या बननेकी चीज है ? देखो , हम कुछ बने हैं इसलिए तो भवभवमे दु:खी है । कुछ बनना परकेआधीन होना है । सम्यक्त्व तो अणुमात्रभी परकेआधीन नहीं है, क्षमता कभी नहीं होता । इसलिए तो वह अनंत है । वही माहिमा है इस सम्यक्त्वकी । आत्मविकासके उत्कर्षका अभिनय सम्यक्त्वसेही प्रारंभ होता है । आश्चर्य नहीं है कि सम्यक्त्वसे सुरु होनेवाला अभियान सम्यक्त्वको छोड़कर पूर्ण नही होता । यह तो स्वभाव है । छूटता नहीं । अनंत है ।

ॐ ह्रीं अचलाय नम:

सिध्द भगवान स्वभावको छोडकर कहीं जाते ही नहीं । जब सम्यक्त्वकी शांति आई तो इदम् मम / मम इदम् का कोलाहल खत्म हुआ । वैसे तो अचलका अर्थ है स्थिर, निश्चल, अंबाधित और पर्वत । सिध्द भगवान स्वभावसे स्वभावमे स्थिर है । परभावसे निर्मित चंचलताएं वैराग्यकेपालनेमे अलाकुलताकी लोरिया सुनकर सदाकेलिए सो गई है, इसलिए वे निश्चल है । संपूर्ण कर्मोंका नाश होनेसे स्वभावमे किंचित्भी बाधा नहीं आसकती, इसी अपेक्षासे आबाधित है पर्वत तो निश्चलताका प्रतिक है । सिध्दभगवान तो केवल सिध्दही है और इस तरह है कि । उनकी तुलनामे कोई नहीं । 'स्वेवात्मना भवनं स्वभाव:' इस

व्याख्याके आधारसेभी कहना होगा कि सिध्द भगवान अपने असाधारण स्वभावसे हुए हैं , वह स्वभाव कभी छूटता नहीं इसलिए अचल है ।

ऐसे अचल सिध्द भगवानको त्रिवार वंदन !

ॐ ह्रीं अनंत सूक्ष्मत्वाया नम: ।

सिध्द भगवानके तो अतीन्द्रिय ज्ञानका सूर्योदय सदाके लिए है । इसलिए अनंत सूक्ष्मत्व है । अतीन्द्रिय ज्ञ, न को 'स्फुटग्' कहा है । स्फुटमका अर्थ भ्रांतिसे रहित ज्ञान, यथार्थ है । भ्रांति तो अंध:कार है, वह अंध:कार अतीन्द्रिय ज्ञान के सामने कबतक टिक सकता हैं ? क्षणमात्रभी नहीं इसीलिए सिध्दजीवोंमे अनंत सूक्ष्मत्व है ।

ॐ ह्रीं अव्याबाधाय नम:

बाधा तो उन जीवोंके होती है , जो कर्मोके चपेटमें है , जिनको कर्मोंने लपेट लिया है । सिध्द भगवान तो सर्व कर्म रहित है, उनको बाधा कैसी ? वे स्वसंवेदन सुखमे निरंतर है । उस निरंतरतामे कभी अंतर नहीं आयेगा ।

ॐ ह्रीं अवगाहन गुणाया नम: ।

ॐ ह्रीं अप्रमेयाय नम: ।

हे आत्मन्, तूं बडा भाग्यवान है, जो तूं सिध्दोंके अनंत गुणोंको सून रहा है । सुनकर धुनमेही गुनगुननानेसे उन गुणोंके प्रति आकृष्ट हो जा, तुझे परमशांति मिलेगी ?

गुण किसे कहते हैं ?

जो संपूर्ण द्रव्यमे व्याप्तकर रहते है और समस्त पर्यायोंके साथ रहनेवाले हैं उन्हें गुण कहते है । कोई आश्चर्य नहीं वस्तुस्वरुपही ऐसा है उसको कौन बदले ? ।

शास्त्रोंमे आता है 'तस्मिन्नैव विवक्षित वस्तुनिमग्ना: 'सारांश उसही विवक्षता वरतुमे जो मग्न हो, वह गुण है चलो हम भी सिध्दोंके गुण चिंतनमे मग्न हो जाये ।

ॐ ह्रीं अजराय नम: ।

अजरका अर्थ है, तरुण अक्षय तथा दृढ । सिध्द भगवान तो अनंत वीर्यधारी होते है; तथा जराउपाधी तो छद्मस्थ अवस्था होनेपरही होती है । सिध्द भगवान तो मुक्त है । जिस कर्मके उदयसे जीवको जरा प्राप्त हाती है, वह कर्म संपूर्णत: नष्ट होनेसे सिध्द जीव सदैव चैतन्यशाली होते है । यहां शंका हो सकती है कि, नित तरुण होना यह भी कर्माधीन है ?

कर्माधीनकी यह चर्चा नहीं है । निजाधिनकी स्वाश्रित बात है । सिध्द जीवोंके सुखका क्षय-लोप नहीं होता; सुख अक्षय होता है । संभवत: कुछ कमी आसकती है ऐसी शंका नहीं

होनी चाहिए । संसारी जीवोंका सुख कम होता है, क्यों कि वह सापेक्ष है, निरपेक्ष सुख तो कभी नहीं होता ।

ऱ्हीं अमराय नम:

हम उस अमरताको नमन करेंगे. जो अमरता काल मरण या अकाल मरण नष्ट नहीं कर सकती । जीवको जबतक कर्म लगे रहते हैं, तबतक जीव मरता रहता है । अमरताका मार्ग कर्म रहित सुंदर सृष्टीसेही जाता है ।

ऱ्हीं अप्रमेयाय नम:

अप्रमेयताको कैसा जाँचे ? जो वस्तु जांची जाती है उसे प्रमेय कहते हैं । सिध्द भगवानके गुण तो अंनत हैं, उसको कैसे जांचे ? इसलिए सिध्द भगवान अप्रमेय है ।

ऱ्हीं अतीन्द्रियज्ञानधारकाय नम: ।

'निर्व्याकुलचित्तानां पुरषाणां सुख तदतींद्रियसुखम्' । ऐसा शास्त्रोंमे लिखा है । व्याकुल चित्त जीवोंका सुख केवल सुखाभास होता है; इन्द्रियोंके निमित्तसे होता है । आत्मसन्मुख रहते हुए जो सुख होता है वह अतींद्रीय सुखके निकट होता है । सिध्द जीवोंका जो सुख है वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है । किसी जिज्ञासू मुमुक्षुका ज्ञान और सुख अलग अलग हो सकते है; इस आशंका को दूर करने लिए कहा होगा कि, जो सुख है ज्ञानही है; क्योंकि सिध्दजोवोंके तो स्वसंवेदन प्रत्यक्षत होती है। आज कल परामनावैज्ञानिकताकी बडी चर्चा है । उसकोशी अतीन्द्रिय ज्ञान कहनेको वैज्ञानिक लालचित हो बैठते है; किंन्तु मेरे विचारस उसमें अतीन्द्रियता नही आ सकती । व्याकुल चित्त हो और अतीन्द्रियता ही,वह तो संभव नहीं । सभवत: वह मतिज्ञान हो । मतिज्ञान की सीमा दूरतक है । उसकी सीमासे बाहर जाना परी मनोवेज्ञानिक क्या जाने? मात्र विद्यमान दृश्यमान जगसे किंचित् भिन्न कल्पानाओंकेअवलं-बनसे जो कुछ मिले समझे उसे अतीन्द्रीय ज्ञान कहना उचित नहीं ।

जो द्रव्य कर्म भावकर्म रहित होकर परमानंद परिणत जीव है, वे ही अतींद्रियज्ञानधारक होते है ।

ऱ्ही अवेदाय नम: ।

जो जीव पुरूष होता है , स्त्री होता है या नपुंसक होता है । वेदनं वेद;

धवल ग्रंथमे कहा है कि आत्माकी चैतन्यरुप पर्यायमे मैथुनरुप चिताविक्षेपके उत्पन्न होनेकी वेद कहते हैं । देखो, चित्तविक्षेप मूल है, जो जो जीवको अन्यत्र भ्रमता है । सिध्द

जीव तो निजानंद लीन हैं । उन्हें तो आत्मसुखकाही वेदन होता है । चित्तविक्षेप क्षणमात्र तथा कणमात्र भी नहीं है ।

ऱ्हीं अभेदाय नम:

हम सिध्दोंके चरणोमे बैठे है । वे पूर्ण कलाधारी है । चेतना आपकी विशेषता है । उसमें भदे नही हो सकता । पूर्णता पूर्णतासे पूर्णता है उसमें हीन या अधीक ऐसा भेद नहीं हो सकता ।

ऱ्हीं निजाधीन जिनाय नम: ।

स्वामी सेवाका भाव निरंतर चला आ रहा है, कोई जीव किसीका सेवाकरता हे तो वह कहता है ,"मैं उनके आधीन हूं "। पराश्रय है । आधारहीन जीव परका आश्रय लेता है । सिध्द भगवान तो स्वयंपूर्ण हैं । किसीके आधीन रहने की उन्हें आवश्यकताही नहीं । उनका आधार 'स्व' हैं,इसिलिए वे तो 'स्व' केआधीन है । जिन हैं, तो निज केआधीन हैं।

ऱ्हीं शुध्द चेतनाय नम:

अब शुध्द चेतनाको नमस्कार किया है । चेताना यह लक्षण है तो चेताना मे क्या शुध्द अशुध्द है ? ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए । चेतनामे 'पर' का एक कणभी उसमें नही समाया जाता । पुद्‌गलकी मायासे दूर है ए सिध्द जीव । चेतना की प्रकर्षेण बतलानेके लिं चेतनाको शुध्द विशेषण दिया है । जो जैसा है । उसे वैसा कहनमे दोष नहीं । सिध्द जीवोंकी चेतना शुध्द होती है, विकाररहित होती है । चेतना तदाकार होती है । कहीं हैं, कहीं नहीं ,ऐसा नहीं । निज प्रदेशमे परद्रव्य का एकभी प्रदेश आ / जा नहीं सकता चैतन्यकी महिमा अपार है । हमारे घरमें दूसरा घुसे या हम दूसरोंके घरमें रहे यह तो संभव नहीं । क्यों ? । क्यों कि यह चैतन्य महाराजाका राज्य है ।

ऱ्हीं शुध्द ज्ञानाय नम:

अहो, अहोभाग्य हमारा जो हम सिध्द भगवानके गुणोंका चिंतन कर रहे हैं । ज्ञान की महिमा हैं । देखो, फिर शुध्द विशेषण आया है । वस्तुस्वरुप को बदला नहीं जाता सिध्द जीओंको ज्ञान शुध्द होता है, वह वस्तु स्वरुप है । ज्ञान की बात आती है तो , अनंत का कमल पूर्ण रुपेण फूलता है । शास्त्रोमें ज्ञानकी अनेक व्याख्याये है । सारांश एक जैसा

होनेपर भी उनमें जो संकेत है, उसकी ओर देखना मानो नयन मनोहर सूर्योदया देखना है । ज्ञानका ध्येय क्या है ? आनंदकेसिवा क्या हो सकता है ?

'जं जाणइ तं णाणं ' ' तत्वार्थावबोधो ज्ञानम् '

इन दो व्याख्याओंका देखिए । पहली व्याख्या पगडंडी है तो दूसरे नॅशनल हायवे । हमें गतव्य की ओर बढ़ना है । पगडंडी हो या हायवे । व्याख्याओंमे कहीं 'भूतार्थ प्रकाशन कहीं याथार्थ श्रध्दानुविध्दावगम' तो कहीं 'तत्वप्रकाशन' की ओर संकेत है । एक व्याख्या 'ज्ञान स्वार्थ निर्णय:' भी है । ऐंसा हम अनुभव करते हैं कि , कोई उद्योगपति बडी इडस्ट्री खोले, उसको इंडस्ट्रीसे कोई लेन देन नहीं, वो तो केवल Prafit देखे रहा है । यह तो केवल दृष्टांत है, यहा तो स्वार्थका अर्थ, अर्थ संकोच का संकोच करता हुआ आत्मोन्मुख विस्तार करता है । सिध्द भगवान निरंतर स्वानंदमे मग्न है, वह स्वानंदही स्वार्थ है । ऐसे शुध्द ज्ञानधारी सिध्द भगवानको मनवचनकायसे भावपूर्ण वंदना ।

ॅहीं शुध्द चिद्रुपाय नम:

सिध्द भगवानके सर्व गुण सिध्द होना स्वाभाविक है । इस स्वाभाविक सूत्रको लेकर भगवान के निकट जानेका प्रबल प्रयत्न करेंगे । शुध्द उसे कहते है, जो अशुध्द न हो । व्याख्या सही होने पर भी ठीक वही है । अंतत: कुछ तो परिभाषा बनानी होगी । फिर शुध्द की परिभाषा क्या होगी ? जिसमे मिलावट न हो वह शुध्द । यहा तो शुध्दात्मा की चर्चा है । अत: 'मिथ्यात्व रागादि समस्त विभाव रहितत्वेन शुध्द' ऐसी परिभाषा कि गयी ।

चित् और रुप ऐसे दो शब्द है । चित् का अर्थ है, चित् शक्ति या अनुभव । शास्त्रोंमे कहा है,अन्वित और अहंम् इस प्रकारके संवेदनके द्वारा अपने स्वरुपको प्रकाशित करनेवाले जिस रुपका सदा स्वंय अनुभव करते है उसीको चित् कहते हैं

रुपके संबंधमे क्वाचिच्चाक्षुषे वर्तने, क्वाचित् स्वभावे वर्तते ऐसा कहा गया है । (कहोंपर चक्षुके द्वारा ग्राह्य कहींपर रुपका अर्थस्वभाव भी है)। हमे तो केवल सिध्दोंके संबंधमे चिंतन करना है , तो अंतरंग शुध्दात्मा नुभूतिकी द्योतक निर्ग्रथ एवं निर्विकार साधुओंकी वीतराग मुद्राको रुप कहेंगे । सरल अर्थ होगा वीतराग मुद्राका अनुभव ।

ॅहीं शुध्द स्वरुपाय नम:

सिध्द जीवोंका स्वरुप तो 'स्व'रुप, उनका अपनाही होता है । पर्यायसे शुध्द बनी रहना उनका स्वभाव है । अन्यरुप विभावरुप नहीं होना स्वरुप है । 'होना' और 'रहना' दो

शुध्द है। सिध्द जीवांने अनंत पुरुषार्थ किये है, यह बतलाता है, 'होना' शब्द और कृतकृत्य बनगये है, और कुछ बनना नहीं है . निरंतर शुद्ध जैसा है वैसा बने रहना 'रहना' शब्द बतलाता है । सिद्ध भगवान शुद्ध रुपसे विराजते हैं ।

ऱ्हीं परमशुध्द स्वरुप भावाय नम: ।

यंहा भव्य जीव भावको नमस्कार करता है । कैंसा है वह भाव 'परम शुद्धस्वरुप' ह ! भावाय अर्थात शुद्ध सत्तास्वरुप वस्तु है । शुद्ध सत्तारुपका अस्तित्व है । कपोसकल्पित वस्तु हैही वहीं । जो कोई शाश्वत वस्तुरुप है उसे नमस्कार किया है । वस्तुका अभाव हो और उसको नमस्कार करें ऐसा वही है । ... परम शब्दका अर्थ उच्च, उत्कृष्ट श्रेष्ठा, मुख्य ऐसा है । सिध्द जीवोंकी अपेक्षा श्रेष्ठा क्या है ? सिध्द जीव तिो भावकर्मद्रव्य कर्मे तथा नोकर्मसे रहित होते है यही उनकी उच्च, उत्कृष्ठ, या श्रेष्ठा अवस्थां है । उस अवस्थ को नमस्कार है परम यह विशेषण है । भक्त अपने आराध्यको कभी कम नही समझना ।

ऱ्हीं शुध्द दृढाय नम: ।

सिध्द प्रभु निजानंदमे मग्न हैं, उस मग्नतासे कभी हटते नही । तीन कालमे भी अपने स्वभावकेडिगते नहीं हटते नहीं । ऐसे दृढ हैं । चंचलताका नाम नही ।

प्र.- सिध्द भागवान दृढ कहां रहते हा ?

उ - सिध्द भगवान अपने शुद्ध स्वरुपमें दृढ रहते है ।

प्र -क्या सिध्द भगवान सिद्ध लोक मे नहीं रहते ?

उ.- हां रहते हैं, किंतु सिध्द लोक कहीं और नहीं है ।

जब जीव कर्मलेपसे रहित होकर जहां स्वाभाविक जाता है, उसे सिध्दलोक कहते है । सिध्दलोक है इसलिए कर्म हित होकर जीव वहां जाता है , ऐसा नहीं ।

ऱ्हीं शुध्द आवर्तकाय नम: ।

हिंसादिक अशुध्द प्रवृत्तियोंसे हटना प्रशस्त समझा जाता है । इसी प्रशस्त योगको एक अवस्थासे हटकर दूसरी अवस्थामे लेंजाना आर्वत है । सिध्द भगवान तो अयोगी है । नित्य स्वयं निज आवर्तक मे बसते हैं । सागर की लहरें सागर के बाहर नहीं जाती । जो ऐसे सिध्द भगवान हैं (निजमे निजका आवर्तन-आवर्त-करनेवाले) उन्हें नमस्कार है । देखो कैसी अलौकिक बात है । कहीं घूमने बाहर जाना नहीं, जान होता है तो वहभी अपने आपमे ।

ऱ्हीं शुध्द स्वयंभवे नम: ।

हम पहलेही कहचुकेहैं कि, सिध्द भगवान के गुण शुध्द होना स्वाभाविक हैं । आचार्य कहते है 'आत्मनमात्मा आत्मन्येवात्मानासौक्षणमुजनयन् सन् स्वयंभू:प्रवृत्त: ' देखो कैसी अपूर्व कला है । आत्मा स्वयं हो जाता है । आत्मा आत्माके द्वारा स्वयं हो जाता है । आत्म आत्मामे स्वंय हो जाता है । आत्मा आत्मा को एक क्षण धारण करता हुआ स्वंय हो जाता है । होता यह है कि आत्मा स्वंयही षटकारकरुप होता है

आत्मिवकासकी सिढी विचरानेपर, जीवके अनादिकालसे बंधेहुए कर्माको नष्ट करना आवश्यक हैं । कर्मोक नष्ट करनेके लिए सहाय्यता नहीं होती. इसी अपेक्षासे स्वयंभूपन है । द्रव्य कर्म तथा भावकर्मे नष्ट होनेपर जो प्रगट होता हैं वह स्वयं होता है । वही आत्मविकास है, वही तत्वोंको जानता है । भगवान स्वयंभू हैं ।

परमशुध्द ऐसे स्वयंभू शुध्द भगवानको नमस्कार हो ।

ॅहीं शुध्द योगाय नम: ।

ज्ञानसे जबतक अपूर्णता होतो है , तबतक मन शंकित होता ही है । मन वचन कार्य के परिस्पंदन को योग कहते हैं इस सक्षिप्त व्याख्याको आधार मानकर मर्म न जानते हुए कुछ लोग शंका करते हैं कि, सिध्द अवस्थामे योग नही होनेपर सिध्द जीव अभावात्मक सिध्द होंगे । किंतु ऐसा नहीं है । आत्मस्वरुपके लाभ का नाम मोक्ष है । मोक्ष शून्य अवस्था नहीं है वहां जो चैतन्य ज्ञानदर्शन होता है वह निरर्थक नहीं होता । कर्मक्षय होनेपर आत्मा अपनें स्वपर प्रकाश पाने को नहीं छोडता । योगधारी सिद् भगवान जयलवंत हो ।

ॅहीं शुध्दजाताय नम: ।

ऐकेन्द्रियादिक भेद न होनेसे सिद्ध भगवान शुध्द जात है । यहां एक शंका ऐसी है कि इद्रियांके अभावमे जीवका भी अभाव हों जायगा ? ऐसी शंका इष्ट नहीं । क्यों कि जीव ज्ञान स्वभावी है; इद्रियोंका विनाश होनेपर ज्ञानका विनाश नहीं होता । त्रिकाल अस्तिरुप रहना स्वभाव है । इस स्वाभाविक अवस्थाको नमस्कार हो । इस स्वाभाविक अवस्थाको हम प्राप्त करें ऐसी हम मंगल कामना करते है ।

ॅहीं शुध्द तपसे नम: ।

केवल इंद्रियोंको तपाना तप नहीं है । व्याख्याएं तो खूब है । संक्षिप्त प्रेमी तथा विस्तारुचि इन दो प्रकारका मनुष्यस्वभाव होता है । संक्षिप्तप्रेमी मनुष्य नय निक्षेप प्रमाणको लेकर वाद विवाद करना पसंद नहीं करता । किसी विवक्षाको लेकर अलग व्याख्या करना पसंत नहीं करता । किसी विवक्षाको लेकर अलग व्याख्या करनाभी झूट समझता ।

विस्तारुची मनुष्य नय प्रमाण निक्षेप आदि अनेक दृष्टीयोंसे विचार करता है क्यों ? निर्णय करनेके लिए । चर्चा करना मनोरंजनका एक क्षण-काल-हो सकता है किंतु निर्णय होना अधिक महत्व रखता है । इन दोनो प्रकारसे न विचार करना सुवर्णमध्य नहीं हो सकता फिरभी 'न अधिक न कर्म' ऐसी प्रणालि स्वीकार करते हुए कुछ व्याख्याएं नीचे दी गई हैं ।

१) कर्म निर्दहनातप: । २) कर्म तापयतीति तप: ।

३) रत्नत्रयाविर्भावामिच्छा निरोधस्तप: ।

४) समस्त रागादि परभावेच्छा त्यागेन स्वस्वरुपे प्रतपनं विजयंन तप: ।

संक्षिप्तमे इतनाही कहना है कि स्व-स्वरू पमे टिकेरहना तप है ।

सिध्द भगवान अनादि कालतक स्वरीपमे रहते है ।

ॐ ह्रीं शुध्दमूर्तये नम: ।

शब्दकोषमे मूर्तीका अर्थ है, आकारयुक्त, स्थूल पदार्थ आकृति अवतार,प्रतिमा, सौदर्यं, स्वभाव आदि । जिन कर्मोकेबंधनसे जीवको संस्थान होता हैं, संहनन प्राप्त होता है , व कर्म तो सिध्द अवस्थामे नही होते । कर्मोके अभावमे स्वभावका तो अभाव होता नहीं । कर्मरहित अवस्थामे जो आकार चेतनामय होता है वह टंकोत्कीण होता है । शाश्वत होता है । अविनाशी होता है ।

ॐ ह्रीं शुध्द सुखाय नम: ।

सुखकी खूब चर्चा हमने की है । यह भी कहा है कि 'सुखकी केवल चर्चा करनेसे क्या लाभ ? (अर्थ लाभ नहीं) । अनुभव की वस्तु है । सिध्द जीव शुध्द सुखका अनुभव कर रहे हैं और करतेही रहेंगे अनंत काल तक ।

उस शाश्वत शुध्द सुखको भावपूर्ण नमस्कार ।

ॐ ह्रीं शुध्द पौरुषाय नम: ।

पुरुषसे पौरुष हुआ है । पुरि - आत्मनि - शेते इति पुरुष: ऐसी व्याख्या को स्वीकार करनेसे आत्मासे संबंध जुड जाता है । जड की जड उखाडनेपरही आत्माकी ओर जीव मुड जाता है । लौकिकमे तो धर्म अर्थ काम अलग अलग तीन कहलाते है । धर्म-अर्थ-काम धर्मार्थ काम एकही शब्द किया जाय तो काम भी धर्मका लिए सिध्द होगा । किंतु जहां पुरषार्थ शुध्द हुवा तो केवल मोक्ष पुरषार्थ साधलेना निज कर्तव्य होगा । मोक्ष पुरुषार्थमे शुध्द हुवा तो केवल मोक्ष साधलेना निज कर्तव्य होगा । मोक्ष पुरुषार्थमें क्या है ? सोचिए । केवल अनुभवरस । निरंश निरंतर सरस स्वानंद रस ।

ॐ ह्रीं शुध्द शरीराय नमः ।

'शीर्यते तत् शरीरम्' ऐसा कहनेपर शरीरका अभाव सिध्द होता है । सिध्द जीव तो अमर हैं । किंचित् न्यून पुरुषाकार रहते है । अनंत काल । शुध्द शरीरका अनंतकाल बने रहना शुध्द शरीरका स्वकाल है । सिध्द जीवोंका शरीर पुरषांकित चेतनमय प्रदेशयुक्त है ।

ॐ ह्रीं शुध्द प्रमेयाय नमः ।

जांच पडताल किससे करे । कौनसा साधन है ? त्रिलोकमे त्रिकालमे ऐसा कोई भावदंड नहीं है,जिससे सिध्द भगवानके जांचा जाय । इस मूलभूत आधारपर अविचल रहो । जांच पडताल कौन करे ? छद्मस्थ जीव । सिध्द जीवोंकी ज्ञान की कक्षा होगी ओर वह पराधीन ज्ञानका पक्ष लेगा । सिध्द जीवोंका ज्ञान तो निष्पक्ष पूर्णरुपसे उत्तुंग हैं । इसिलिए सिध्द जीव और उनके गुण केवल ज्ञानगम्य है ।

ॐ ह्रीं शुध्द शुध्दोपयोगाय नमः ।

उपयोगमे शुध्दता होने चाहिए या शुद्धतामे उपयोग ? क्या इन दो प्रश्नोंका उत्तर है ? इन दो प्रश्नोंका उत्तर हो या न हो किन्तु इन दो प्रश्नोंका निर्माण एक गोरखधंधा है । 'उवओगोणाणं दंसणं होई यह सर्व सुलभ व्याख्या है । उपयोग का चैतन्यानुविधायी होना प्रमुख लक्षण है । थोडेमे कहना हो तो यूं कह सकते है; चैतन्यको छोडकर अन्यत्र नहीं रहना वह परिणाम उपयोग है । उसमे परम शुध्दता शुध्दोपयोगी है । अन्यत्र नही रहना, स्वमे रहना । स्वपरग्रहण परिणाम उपायोगः' स्व व परको ग्रहण करनेवाले परिणाम को उपोयग कहते हैं । जानना स्व व परको है । रहना स्व मे है ।

चैतन्यानुविधायी प्रमुख लक्षण है ,तो चैतन्यका अनुविधायी क्या है ? पदार्थ परिच्छित्तिके समय 'यह घट'

'यह पट है ' उस प्रकार अर्थ ग्रहण रुपसे व्यापर करता है वह चैतन्यका अनुविधायी है । जहांतक शुध्दोपयोगका प्रश्न है, कह सकते हैं कि शुध्दोपयोग निर्मल आत्मगुणोंको स्पंदित करता है :

शुध्दोपयोगकी महिमा क्यां कहे ? एक जगह लिखा है, निश्चय रत्नत्रयात्मक था निर्मोह शुध्दात्माका संवेदन ही है लक्षण जिसका वह शुध्दोपयोग है । स्व संवेदन प्रमुख है । उसके बिना क्या है ? शुभोपयोगमे तो मोह चलता है; पुण्यानुगामि जो है । शुध्दोपयोगमे

पुण्यभी कहां रहा; तो निर्मोह होनेपर संवेदनमे शुध्दात्मा होनेपर आलंबन या अवलंबन शुध्द होता है ।

ध्येंय की बात कहो तो स्व आत्मा है सो ध्येय है । संयमसे सोचो तो परम उपेक्षा संयम शुध्दोपयोग है ।

शुध्दोप-योग होनेपर जीव स्वसंवेनाय शुध्दात्मपदको परमसमरसी भावसे अनुभव करता है । क्या ? शुध्दोपयोग तो अनुभवकी बात है ।

शुध्दोपयोगकर फल समस्त दु:खोंसे रहित स्वभावने उत्पन्न और अविनाशी ऐसा ज्ञान राज्य है ।

स्वरुप यह अमृत है तो शुध्दोपयोग अमृतप्रमदायिना शक्ति है ।

अधिक क्या कहे, शुध्दोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ।

शुध्दोपयोगहीमोक्ष प्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ।

शुध्दोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए ही सर्वस्व है ।

शुध्दोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्वही है ।

शुध्दोपयोग मोक्षप्राप्तीकेलिए सर्वस्व है ही ।

इसलिए - चलना है मुमुक्षू होकर, चढना है शुध्दीपयोगी होकर, और चखना है स्वानंदरस ।

ऱ्हीं शुध्द भोगाय नम: ।

ववहार सुहदु:क्खं पुग्गल कम्मफ्फलं पभुंजेदि ।

आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स ।

भव्यात्मन् ! व्यवहारनयकी बात छोड. आत्मा किसको भोगता है, सोच, निश्चयनयसे सोच - आत्मा अपने चेतन भावको भोगता है । व्यवहार हार जाता है, निश्चयनय जीना जीता हैं, लक्षको पहुंचनेतक । कर्ता भोक्ता किसे कहते है ? अर्थात् जो स्वतंत्रपने करे भोग उसको । आत्माको स्वातंत्र्य किसका ? अर्थात् अपने चेतन भावको भोगनेका । स्वातंत्र्य होता है सा स्वरुपभूत होता है; तथा ऐसा स्वातंत्र होनेपर जो सुखकी उपलब्धी हो वह भोक्तृत्व है । पारतंत्र्यसे भवसागर पार नही होता । वह तो स्वातंत्र्यकी महिमा है की जीवका भवसागर पार कर दे । अधीक कहनेसे क्या ? जैसे दरिद्र पुरुष विधिकी पाकर एकांतमे (गुप्तपनेसे) उसेक फलको भोगता है उसी प्रकार ज्ञानी परजनोंकेसमूहको छोडकर

ज्ञाननिधीको भोगता है । कोई शंका करे कि पहले तो अपने चेतनभावक बात करी और अब ज्ञान निधीकी, ऐसा क्यो ? तो कहना होगा कि , चेतनभाव और ज्ञानसे अलग ऐसा त्रिकाल संभव नहीं । चैतन्य और ज्ञान व्याप्य है, अलग अलग नहीं ।

ऱ्हीं शुध्दावलोकाय नमः ।

अवलोकका अर्थ है देखना । क्या देखाना ? यही देखना है कि क्या देखना उपादेय है । अवलोकन कहो, देखना कहो या दर्शन कहो, एकही बात है । चेतनाका निजी प्रतीभास दर्शन है। निजी प्रतिभास कहां से आया । अरे भाई जहासे चेतन आया वहांसे निजी प्रतिभास आया । चेतन तो है ही है, सदा सर्वदा किंतु उसका प्रतिभास आवश्यक है । प्रतिभास पर भावोंमे लुप्त हो गया है उसको निकालना है वही अवलोकन है । यह निजी प्रतिभास निर्विकल्प होता है । यहांतो कहा है -

निर्ममत्व युगपत लखो, तुम सब लोकलोक ।

शुध्दज्ञान सुमको लखो, नमों शुध्द अवलोक ।।

ऱ्हीं अर्ह प्रज्वलितशुक्लध्यानाग्निजिनाय नमः ।

भो आत्मन् जरा सोच ध्यानाको अग्नि कहा है, क्यों ? व्यवहारमे देखो, जितनी आवश्यकता हो उतनी मात्रामे अग्नीका उपयोग करो सुखकारक है और अनावश्यक उपयोग घातक है । उपयोग कैसा किया जाय, कितना किया जाय यह तो विवेक है । पर ध्यानकी बात उलटी है, अलौकिक है । कैसी ?

ध्यान करो, प्रकाशित हो उठेगी, ध्यान करो कर्म काष्ट जल जायेंगे । तो क्या ध्यानमें विवेक नही होता ? भाई ऐसी बात नहीं है । उसमे विवेककी बात पहिलेही ही चुकी होती है । जब मुमुक्षु विवेकसे उपर उठता है तो ध्यान होता है । विवेक की अगली सीढीका नाम ध्यान है :

यहां तो सिध्दों की बात है , शुक्ल ध्यान की चर्चा है ।

सच कहो तो शुक्ल ध्यान निष्क्रिय है । कैसे ? 'मैं ध्यान करु' इस प्रकार केध्यान की धारणासे रहित है । ध्यानमे इन्द्रियातोत अवस्था होती है॑ जिससे चित्त अंतर्मुख होता है । कहा भी है -

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं ।

(आत्मा निजात्मासे तल्लीन होकर स्थिर हो जावे, आत्मामे लीन होनाही परम ध्यान है ।)

आत्मामे तल्लीन होना कैसे होता है ? सोचनेकी बात है । शास्त्रोंमे आता है, 'कुछ भी चेष्टा मत कर, कुछभी मत बोल ओर कुछभी चिंतन मत कर जिससे आत्मामे आत्मा स्थिर हो स्थिर होनेपर निरंजन निज परमतत्वमे अविजल स्थिति होती है । जब जीव रागादि विकल्पसे रहित होता है तो अविचल स्थिति होती है । इस स्थितीमे स्व सवेदन है । यह स्वसंवेदनी आत्मामे तल्लीन होना है । सिध्द जोवांको शुध्द आत्मा स्वसंवेदन प्रत्यक्ष है ।

सिध्द जीवोंको त्रिवार त्रिप्रकारेण नमोस्तु ।

श्री १०० श्री सिध्दचक्रविधान महिमा स्तुति

श्री सिध्दचक्रका पाठ । करो करो दिन आठ ।।

ठाठ से प्राणी । फल पायो मैना रानी ।। टेक ।।

मैनासुंदरी इकनारी थीं, कोढी पति लखि दुखियारी थी,

नही पडे चैन दिनरैन । व्यथित आकुलानी -। । पल पायो ।।

जो पति का कष्ट मिटाऊंगी तो उभय लोक सुख पाऊंगी,

नहि अजागलस्तनवत । निष्फल जिंदगानी । ।। फल पायो ।।

इक दिवस गई जिन मंदिरमे, दर्शन कर अति हर्षी उरमें,

फिर लख साधु निर्ग्रन्थ । दिगम्बर ज्ञानी । ।। फल पायो ।।

बैठे मुनि को करि नमस्कार, निज निंदा करती बार बार,

भरि अश्रु नयन कहि मुनि सों । दुखद कहानीं । ।। फल पायो ।।

बोले मुनि पुत्रीं धैर्य धरो श्री सिध्दचक्रका पाठ करो ,

नहि रहे कुष्टकी तन में । नाम निशानी । ।। फल पायो ।।

सुनि साधु वचन हर्षी मैना , नहि होय झूट मुनिकेबैना ,

करकेश्रध्दा श्री सिध्दचक्रकीं ठानी ।। फल पायो ।।

जब पर्व अठाई आया है उत्सवयुत पाठ कराया है,

सबकेतनको छिडका यंत्र न्हवनका पानी ।। फल पायो ।।

गन्धोदक छिडकत वसु दिन में , नहि रहा कुष्ट किंचित् तन में ,

भई सात शतक की काया स्वर्ण समानी ।। फल पायो ।।

भव भोग भोगि धोंगेश भये श्रीपाल कर्म हन मोक्ष गये

दूजे भव मैना पावे राजधानी ।। फल पायो ।।

जो पाठ करे मन वच तन से । वे छूटि जाय भवबन्धनेस ,

“ मख्खन मत करो विकल्प कहा जिनवाणीं ।। फल पायो ।।

श्री सिध्दचक्राची आरती

जय सिध्दचक्रदेवा जय सिध्दचक्र देवा,

करत तुम्हारी निशदिन मन से सुरनर मुनिसेवा । जय ।

ज्ञानावर्ण दर्शनावरणी मोह अंतराया,

नाम गोत्र वेदनी आयुको नाशि मोक्ष पाया । १ ।

ज्ञान अनंत अनंत दर्श सुख बल अनंतधारी ,

अव्याबाध अमूर्ति अगुरुलघु अवगाहन धारी । जय ।। २ ।

तुम शरीर शुध्दचिं मूर्ति स्वातम रस भोगी ।

तुम्हे जपे आचार्योपाध्याय सर्व साधुयोगी । जय । ३ ।

ब्रम्हा, विष्णू, महेश, सुरेश गणेश तुम्हे घ्यावे ,

भविशति तुम चरणाम्बुज सेवत निर्भयपर पावे । जय । ४ ।

संकट तारण अधम उधारण भवसागर तरणा,

अष्ट दुष्ट रिपु कर्म नष्ट करि जन्म मरण हरना । जय । ५ ।

दीन दु:खीं असमर्थ दरिद्री निर्धन तन रोगी,

सिध्दचक्रको ध्याय भमे ते सुरनर सुखी भोगी । जय । ६ ।

डाकीनी शाकिनीं भूत पिशाचिनी व्यंतर उपसर्गा,

नाम लेत भगि जाय छिन कर्मै सब देवी दुर्गा । जय । ७ ।

बन रन शत्रु अग्नि जल पर्वत विषधर पंचानन,

मिटे सकल भय कष्ट करै चे सिध्दचक्र सुमिरन । जय । ८ ।

मैनासुंदरि कियो पाठ यह पर्व अठाशनिमे ,

पतियुत सात शतक कोठिन का गया दिन कुष्ट छिनमे । जय । ९ ।

कार्तिक फागुन सेाढ आठ दिन सिध्दचक्र पूजा ,

करे शुध्दं भावों सें मख्खन लहै न भवइजा

। जय सिध्दचक्रदैवा । १० ।